तमाशा

लगभग तीन साल पहले इस कहानी के और न जाने कितनी ही कहानियों और नाटकों के लेखक स्वदेश दीपक सुबह सैर करने निकले और कभी वापस नहीं आये। उन्हें ढूंढने का न जाने कितना प्रयास किया गया, पर सफलता नहीं मिली। वे मानसिक व्याधि से ग्रस्त थे। उनका इलाज भी चल रहा था, पर किसी ने न सोचा था कि ऐसा बहुमुखी प्रतिभा संपन्न लेखक एक दिन अचानक गुम हो जायेगा। स्वदेश दीपक की कहानियां नये दौर की कहानियां हैं। इनको किसी सांचे में बांध कर नहीं देखा जा सकता है। ये कहानियां सर्वथा मौलिक हैं और इनमें बेध कर रख देने वाला सच है। प्रस्तुत है स्वदेश दीपक की एक कहानी जो उनके संग्रह निर्वाचित कहानियां से ली गई है।

यह अधेड़ उम्र का आदमी बड़ी देरी से किसी सायेदार पेड़ की तलाश कर रहा है। उसका आठ साल का लड़का बड़े थके-थके कदमों से बाप के पीछे चल रहा है। उसके गले में एक छोटा-सा ढोल पड़ा हुआ है जिसे वह थोड़ी-थोड़ी देर के बाद हाथों से पीट देता है। जब भी कोई पेड़ नजदीक आता है वह बड़ी तरसती निगाहों से उसे देखता है-शायद बापू इसके नीचे ठहर जाए। लेकिन नहीं, पेड़ बड़ा है तो सायेदार नहीं। अगर सायेदार है तो छोटा है मजमा लगाने के लायक नहीं। बाप ने सिर पर बड़ी-सी पगड़ी बांध रखी है। इसके लटक रहे सिरे से वह बार-बार मुंह और गर्दन पोंछ लेता है। इनके पीछे-पीछे लड़कों का एक झुंड चला जा रहा है। बाप बार-बार पीछे मुड़कर पीछा करते लड़कों को देखता है और खुश होता है। खेल तमाशा देखने वाले यह छोटे-छोटे दर्शक ही भीड़ को बढ़ाने में मदद देते हैं।

अभी सुबह के दस ही बजे हैं। लेकिन सूरज, गर्मियों का सूरज सेना की हरावल पंक्ति के आगे चलते हुए किसी क्रुद्ध सेनापति की तरह लंबी-लंबी छलांगें लगाकर ऊपर चढ़ आया है। सूरज चारों तरफ बड़ी देर से तीखी और गर्म किरणों की बरछियां और किरचें बरसा रहा है। छोटे लड़के के गले में पड़ी ढोल की रस्सी पसीने से भीग गई है और उसके गले में, गर्दन में खारिश हो रही है। उसके गाल पिचके हुए हैं और बारीक मशीन से कटे सिर के छोटे-छोटे बालों की तरह सीधे खड़े हैं। सूरज की निर्दय गर्मी ने उसे पीट डाला है। पिछले कई मिनटों से उसने ढोल पर थाप नहीं दी। बाप किसी जंगली सूअर की तरह गर्दन को थोड़ा सा टेढ़ा कर देता है और तीखी आवाज में कहता है- शुरू कर देता है। सेनापति सूरज इस छोटे से नगाड़े की आवाज सुनकर थोड़ा और ऊपर उठ जाता है। आक्रमण की मुद्रा में लड़के के बिल्कुल चेहरे के सामने तेज, चमकदार और गरम-गरम तलवार लपलपाने लग पड़ता है।

सामने नीम का एक बड़ा-सा पेड़। इसके आसपास कुछ रेहड़ियों वाले, कुछ खोखे हैं और चंद पक्की दुकानें। बाप के कदम इस ओर बढ़ते देखकर लड़के की पतली लकड़ियों जैसी टांगें आखिरी हल्ला मारती हैं, और वह छोटी-सी दौड़ लगाकर बाप के आगे निकल जाता है। पेड़ के नीचे पहुंचते ही वह गले से ढोल उतार देता है और पेड़ के तने के साथ पीठ लगाकर तेजी के साथ फेफड़ों में हवा भरने लगता है। पीछे आ रहे बच्चों और लड़कों का झुण्ड अब उसके आसपास घेरा डालकर खड़ा है। लेकिन वह किसी की ओर भी आंख उठाकर नहीं देखता। यह तो उनकी जिंदगी में रोज ही होता है। आने वाले तमाशे के सारे के सारे दृश्य और इनके कटे हुए टुकड़े लड़के के दिलो-दिमाग में पहले से ही मौजूद हैं। इसलिए दूसरे लड़कों की तरह न ही उसे इस तमाशे के प्रति कोई उत्सुकता, और न ही इसमें कोई रस मिलता है। अब वह अपने होठों पर बार-बार जबान फेर रहा है। इधर-उधर किसी डरे हुए चूहे की तरह गर्दन मोड़कर देखता है, कहीं कोई नल अथवा पंप दिखाई नहीं देता। बाप की तरफ देखता है। वह बड़ी-सी गठरी को खोल रहा है, तमाशे का साजो-सामान जो बाहर निकालना है। बाप से पानी के लिए कहे न कहे। फिर वह बाप से कुछ न कहने का फैसला कर लेता है। चूल्हे में जलती लकड़ी, बाप का इसे खींचकर बाहर निकालना और हवा में अपने बचाव में उठे मां के दोनों हाथ-ये सारे की सारी ताजा घटनाएं इसे आतंकित कर देती हैं।

बाप ने पेड़ के नीचे सफेद चादर बिछा दी। लड़के की तरफ उसकी पीठ है। लेकिन उसे साफ महसूस होता है कि दो छोटी-छोटी आंखें उसकी पीठ में सुराख किए डाल रही हैं। किसी जानवर की तरह आसपास के वातावरण को ग्रहण करने, किसी के शरीर की उपस्थिति को महसूस करने की शक्ति उसकी गर्दन को लड़के की ओर मोड़ देती है।

'कैसे मुर्दों की तरह बैठा है। बाप मर गया है क्या? हैं। उठ! सामान चादर पर रख।'

उसकी तेज आवाज सुनकर आसपास खड़े लड़के धमक गए, पीछे हट जाते हैं।

'पाणी पापी है।'

'तो उठ। जाकर पी ले। किसी रेहड़ी वाले से मांग ले। तेरा बाप कुआं खुदवा दे क्या। हराम दा बीज। मां की तरह नखरे क्या दिखाता है।'

लड़का किसी मरियल कुत्ते की तरह कमर का सारा जोर टांगों पर डालता है, किसी धीरे चल रही फिल्म की तरह उसका जिस्म टुकड़ों-टुकड़ों में मिलता है और वह पास की कुलचों-छोलों की रेढ़ी की ओर बढ़ जाता है। बाप अब थैले से चीते का सूखा, मरा हुआ सिर निकालता है। उसे याद आया कई साल पहले पांच रुपये में चीते का यह सिर एक बूढ़े मदारी से उसने खरीदा था। बार-बार हाथ लगने से इस मुर्दा सिर के बाल झड़ गए हैं। सूखे हुए जबड़ों में तेज नुकीले दांत बाहर निकल गए हैं। आंखों की जगह नीले बिल्लौर हैं जो एक मरी हुई निर्दयता से उसकी ओर घूर रहे हैं। चीते का मरा हुआ मुंह खुला हुआ है। उसकी निगाह इस अंधेरी गुफा में पड़ती है और बीवी का बीमार लेकिन गुस्से से भरा हुआ चेहरा जोर से गुर्राता है, दहाड़ता है और उसकी ओर झपट पड़ने के लिए, छलांग लगाने की मुद्रा में शरीर को सिकोड़ने लग पड़ता है। वह डर गया। झटके के साथ मरे हुए सिर को सफेद चादर के नीचे रख दिया। चूल्हे से खींची हुई जल रही लंबी लकड़ी और बचाव के लिए हवा से उठे घरवाली के दोनों हाथ चीते के मुंह से निकलकर उस पर आक्रमण कर देते हैं।

इस शहर में आए उन्हें तीन दिन हो गए। शहर से बाहर बड़ी सड़क के किनारे उसने अपना फटा हुआ तंबू गाड़ा था। छोटा लड़का आसपास घूमकर कुछ सूखी टहनियां चुन लाया था। घरवाली चार ईंटों का चूल्हा तंबू के बाहर बना देती है। वह बैठा चिलम पीकर थकावट उतारता है। घर की सारी जायदाद, लोहे का बड़ा सा ट्रंक, तमाशा दिखाने का सामान और जानवरों के कटे हुए सिर, यह सब कुछ उसे उठाकर पैदल चलना होता है। इसलिए तंबू गाड़ने के बाद वह दूसरा और कोई काम नहीं करता। घर के तीनों सदस्यों का काम बंटा हुआ है।

उसका तथा लड़के और घरवाली का सारा जीवन शहर-दर-शहर घूमते और फेरी लगाते हुए बीतता जा रहा है। शहरों में तीन-चार बार तमाशे दिखाने के बाद उसे अगली यात्रा के लिए निकल पड़ना होता है क्योंकि दर्शक बहुत जल्द खत्म हो जाते हैं। पिछले कई सालों से घंटों गला फाड़ने के बाद, छोटे-छोटे करतब दिखाने के बाद भी तीन आदमियों का पेट भरना दुश्वार हो रहा है। लोग शायद तमाशा देखने के लिए ही जेबों में एक-एक नया पैसा डालकर लाते हैं और फिर भीड़ को भी कड़े वक्त ने चालाक और जमानासाज बना दिया है। सांप-नेवले की लड़ाई के अंतिम दृश्य के साथ तमाशा खत्म होता है। इस मौके के आते ही लोग धीरे-धीरे खिसकना शुरू कर देते हैं। बचे हुए चंद लोग बड़ी बेदिली से चंद सिक्के फेंककर राह लग जाते हैं और अगले दिन की भूख का दानव इसी गर्दन को जांघों के बीच जकड़कर बैठ जाता है। शहर-शहर, भूख-भूख और खाली पेट की यात्राएं। भूख का यह दानव किसी भी शहर में दम नहीं लेने देता। किसी घुड़सवार की तरह लोहे के नोकदार जूते से लगातार एड़ मारता रहता है।

पहली शाम घरवाली ने लोहे का ट्रंक खोला। छोटी-सी पोटली बाहर निकाली। खोला तो पाव भर आटा निकाला। दो-दो रोटी उनके हिस्से में आई और एक लड़के के। उसने चार गिराहियों में रोटी खत्म कर दी। मां को घूरकर देखा और बोला-'रोटी और दे।'

'बस खत्म। अपने हिस्से की तूने खा ली।'

'नहीं अभी भूखा हूं और खाऊंगा।'

'बड़-बड़ मत कर। सुणदा नहीं। रोटी खत्म है।'

लड़का एक झटके से उठ ठहरा। वह कोई चीज उठाकर मां को मारना चाहता है। लेकिन बाप की घूरती हुई आंखें देखकर उसने इरादा बदल दिया। वह तंबू के बाहर आ गया। अन्न की बास पाकर, एक मरियल-सा कुत्ता तंबू के बाहर प्रतीक्षारत आंखों के साथ आ बैठा है। लड़का दबे पांव कुत्ते के पास से गुजरा। थोड़ी दूर जाकर उसने ईंट का एक चौकोर टुकड़ा तलाश कर लिया। उसने हाथ हवा में लहराकर दो बार निशाना साधा। फिर पूरी ताकत से ईंट का टुकड़ा कुत्ते की गर्दन पर दे मारा। एक लंबी टें के साथ कुत्ते ने उछाल भरी और वहां से भाग खड़ा हुआ। दूर जाकर, तंबू की ओर मुंह करके वह लगातार वातावरण को घायल करता रहा। लड़के का गुस्सा और भूख दोनों खत्म हो गए। उसकी कल्पना में इस वक्त कुत्ता नहीं-मां है, जिसकी गर्दन पर रोटी न देने के जुर्म में उसने ईंट का टुकड़ा दे मारा।

सुबह होने पर बीवी ने ट्रंक के कोने से एक मैला कुचैला रुपये का नोट निकालकर उसे दिया। आटा लाने के लिए कहा। वह शहर की ओर चल पड़ा। कैसे दिन आ गए हैं। वह छोटा था तो अपने मदारी बाप के साथ जमूरा बनकर तमाशा के लिये जाया करता था। लोग तमाशा देखते थे और बड़ा फराखदिली के साथ सिक्के फेंकते थे। उसे आज भी याद है, सफेद चादर बिखरे हुए सिक्कों से अट जाया करती थी। वापसी पर बापू उसे गुड़ की बनी हुई रेवड़ियां खरीदकर दिया करता था और अपने लिए शराब का अद्धा लिया करता था। मां चुल्हे पर फुल्का उतारा करती थी, वह कड़-कड़ करती रेवड़ियां खाया करता था और बाप शराब पीकर मस्ती के आलम में एक हाथ कान पर रखकर हीर गाया करता था और अब? आटे के लिए पैसे पूरे नहीं पड़ते, लड़का और रोटी मांगता है, घरवाली ताने देती है, गालियां देती है, वह उसे पीटता है।

बाजार में पहुंचकर उसने देखा कि सारी की सारी दुकानें खाली पड़ी हैं। कहीं पर कोई ग्राहक दिखाई नहीं पड़ता। खरीदने के लिये लोगों के पास कुछ भी बच नहीं रहा है। अपने मैले कपड़ों और तेल चू रहे बालों और फटीचर हाल के कारण उसे दुकान के अंदर घुसने में हमेशा डर लगता है। वह अब तक बाजार के तीन चक्कर काट चुका है। किसी से आटे की दुकान का पता पूछते हुए डर रहा है। आखिर साहस करके रिक्शे वाले के पास ठहरता है।

'आटा कहां मिलेगा?'

'क्या कहा? आटा? जा भाई, अपना रास्ता पकड़। क्यों सवेरे-सवेरे मखौल करता है।'

उसे बड़ी हैरानी हो रही है। आटा खरीदने के लिए पूछने पर यह आदमी मखौल क्यों समझ रहा है। लोगों को क्या होता जा रहा है। रिक्शा वाला बुझी हुई बीड़ी को फिर से जलाता है। उसके चेहरे पर छाई परेशानी और बदहवासी को देखता है और दांतों से बीड़ी का एक सिरा काटकर कहता है-'इस शहर में आटा नहीं मिलता है।'

अब वह मुंह खोलकर बेवकूफों की तरह रिक्शा वाले की ओर देख रहा है, सोच रहा है - क्या जमाना आ गया है। गरीब भी गरीब का मजाक उड़ाने लगा। वह हार मान गया। सिर झुकाए खड़ा है। रिक्शा वाला झटके से सड़क पर बीड़ी फेंककर कहता है-'भाई, मैं सच कह रहा हूं। अब तुम्हें किसी भी दुकान पर आटा नहीं मिल सकता। आटा बेचने और गेहूं खरीदने का काम अब सरकार के हाथ में है। हां, अगली गली के अंदर मुड़ जाओ। सरकारी राशन की दुकान है। किस्मत होगी तो मिल जाएगा।'

वह उसे कोई जवाब दिये बिना गली के अंदर मुड़ गया। दुकान सामने ही है। लेकिन बहुत लंबी लाइन। वह भी उसमें शामिल हो गया। लोगों के चेहरों पर इतनी गर्मी में भी प्रतीक्षा करने पर कहीं गुस्सा या बेचैनी नहीं। सब्र और संतोष तो गरीब लोगों का गुण है ही। लगभग दो घंटे के बाद वह दुकान की दहलीज के अंदर पांव रख पाया। दुकानदार उसकी ओर हाथ बढ़ाकर कहता है - 'कार्ड।'

वह चौंक गया। भयभीत होकर इधर-उधर देखा। फिर रुपये का नोट निकालकर आगे बढ़ता है। 'ओए, पहले कार्ड दे।'

'कार्ड? क्या कार्ड? मेरे पास नहीं।'

दुकानदार पहले से ही खीझा बैठा है। तीखी आवाज में कहा - 'चल हट। निकल बाहर। सरकारी दुकान है, सरकारी। आ जाते है मुंह उठाए। परे हट। औरों को आने दे। यहां आटा-वाटा नहीं।'

उसके पीछे लाइन में खड़े लोग बेचैन हो रहे हैं। वह निगाह घुमाकर सहायता के लिए चारो ओर देखता है। लेकिन उसकी नजर पड़ते ही लोग चेहरा दूसरी ओर कर लेते हैं, जैसे उन्हें पता हो कि वे सब कोई पाप कर रहे हैं और तब उसे अपनी घरवाली और लड़के के खाली पेट का ध्यान आया। आशा टूट जाए तो भय भी गायब हो जाता है। वह वैसे भी गुस्से वाली तबीयत का आदमी है। अब वह सूरज की तेज गरमी, दो घंटे की प्रतीक्षा, सरकारी राशन की